वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष १४, शनिवार

दि.१९-२-१९६६, गाथा-९, प्रवचन नं.-३०

'छहढाला', उसमें चौथी ढाल चलती है, उसका ९वाँ श्लोक। श्लोक चला है, थोड़ा भावार्थ बाकी है। श्लोक फिर से (लेते हैं)।

पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख विलखौ मत भाई;
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बातकी बात यही, निश्चर उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।।९।।

क्या कहते हैं ? देखो ! अन्तिम दो शब्द हैं न ? '**पुण्य-पाप का बंध वह पुद्गल की पर्यायें (अवस्थाएँ) हैं;...**' क्या कहते हैं ? आत्मा है, आत्मा; वह शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यमूर्ति (है)। उसकी दृष्टि (करने से) और उसमें स्थिर होने से कभी बन्ध होता नहीं। आत्मा ज्ञानानन्द पवित्र स्वरूप (है), उसकी अन्तर में श्रद्धा और उसका ज्ञान (करना) और उसमें लीनता होने से तो नया कर्म का बन्ध होता नहीं। पुराने खिर जाते हैं। यहाँ कहते हैं कि, पूर्व में अपने स्वरूप के भान बिन जो शुभ और अशुभभाव किये ते, पुण्य और पाप के भाव पूर्व में (किये थे)...

'**पुण्य-पाप का बन्ध, वह पुद्गल की पर्यायें (अवस्थाएँ) हैं;...**' है ? क्या कहते हैं ? कि, अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव है, उसकी यदि धर्म दृष्टि हुई हो और अपने ज्ञान में लीनता-चारित्र हुआ हो तो उससे तो नया बंध होता नहीं। समझ में आया ? '**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः**' यह तो छूटने का रास्ता है। क्या (कहा) ? आत्मा शुद्ध चैतन्य, राग-द्वेष, पुण्य-पाप से रहित, शरीर-देह की क्रिया से रहित - ऐसा अपना आत्मा एक

सैकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध आनन्द (स्वरूप है), ऐसी अन्तर्मुख की दृष्टि करना, वह तो बन्ध का कारण नहीं, वह तो मोक्ष का कारण है। डॉक्टर ! समझ में आया ? समझने की थोड़ी सूक्ष्म बात लेते हैं, देखो ! पाठ में तो ऐसा लिया ना ?

'**पुण्य-पाप फलमांहि, हरख विलखौ मत भाई;**' श्लोक है न ? डॉक्टर !

यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बातकी बात यही, निश्चर उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।।

बड़ा श्लोक (है)। देखो ! '**पुण्य-पाप का बन्ध, वह पुद्गल की पर्यायें (अवस्थाएँ) हैं;...**' क्या कहा ? पूर्व में कोई आत्मा ने शुभ-अशुभभाव किया हो; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा (के भाव किये), वह शुभभाव हैं। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, पापभाव हैं। दोनों भाव से नया बन्ध पडता है। शुभभाव से पुण्यबन्धन होता है, अशुभभाव से पापबन्धन होता है। एक बात। समझ में आया ? धर्म तीसरी चीज़ है।

पुण्य और पाप के भाव से भिन्न, अपना ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अन्तर में राग की एकता बिना स्वभाव की अन्तर एकता करके सम्यग्दर्शन प्रकट करना, वह मुक्ति का मार्ग है - और अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव का ज्ञान करेक एकाकार होना, वही मुक्ति का मार्ग है। फिर स्वरूप में लीन होना, आनन्दस्वरूप चिदानन्द काम अनुभव हुआ हो - ऐसे सम्यग्दृष्टि बाद में स्वरूप में लीन (होना), चरना, रमना, जमना (हो), उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं।

'**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः**' ये तीनों तो मोक्ष के मार्ग है। यह मार्ग प्रकट करने से पहले अनादिकाल से चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करते-करते उसने पुण्य और पाप अनन्तबार किये और उससे पुण्य-पाप का बंध भी रजकण में, पुद्गल में, जड़ में बंध हो गया। अब कहते हैं कि, पुण्य-पाप के भाव से जो जड़ बंध हुआ, उससे जो संयोग मिलता है, वह पुद्गल की अवस्था है। क्या (कहा) ? पुण्य-पाप, जैसा शुभभाव-अशुभभाव किया

था, उससे कर्म का बन्ध पड़ा, वह तो पुद्गल की अवस्था है। समझ में आया ? बराबर है ? क्या कहा ?

जिसको आत्मा का कल्याण करना हो, उसका (आत्मा का) ज्ञान करना, वह तो पहले कहा ना ? पहले कहा था। सातवें श्लोक में नहीं आया था ? '**धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै;**' सातवाँ श्लोक है ?

ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहचै।
तास ज्ञानको कारन, स्व-पर विवेक बखानौ;
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ।

है ? करोड़ उपाय करके भी स्व-पर का विवेक करना, वह तेरा पहला कर्तव्य है। समझ में आया ? भेदज्ञान - पुण्य-पाप का जो विकल्प उठताहै, वह विकार है; आत्मा उससे भिन्न है - ऐसा सब-पर का विवेक करना वही कोटि उपाय करके भी पहले वह करो। भेदज्ञान किये बिना कभी कल्याण और मुक्ति का मार्ग तुझे (प्राप्त होगा नहीं)। आहा..हा... !

कहते हैं कि, सम्यग्ज्ञान '**कोटि उपाय बनाय**' स्व-पर भेद, पुण्य-पाप का भाव, उसे समझना पड़ेगा या नहीं ? शुभ-अशुभभाव उठता है, वह विकार बन्ध का कारण है। उससे रहित मेरी चीज़ शुद्ध चिदानन्दस्वरूप के सन्मुख होकर स्वभाव की दृष्टि करना और अन्तर स्वभाव का ज्ञान करके स्वभाव में लीन होना, वही एक मुक्ति का मार्ग और छूटने का रास्ता है, दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग है नहीं।

कहते हैं कि, पूर्व में पुण्यभाव, पापभाव किया था, उसमें पुद्गल की पर्याय बन्धी थी, कर्म का बन्ध हुआ वह पुद्गल की अवस्था है, उसमें आत्मा की कोई अवस्था प्राप्त होती नहीं। समझ में आया ? शुभ और अशुभभाव होते हैं। तीन भाव होते हैं, शुद्ध, शुभ और अशुभ। शुभ और अशुभभाव है, उससे तो पुद्गलकर्म की, जड़ की अवस्था कर्म की बँधती है। और शुद्धभाव है, वह तो अपना आत्मा सन्मुखी श्रद्धा, ज्ञान, शांति करना उसका नाम शुद्धभाव है। इस शुद्धभाव से बंध नहीं होता। शुद्धभाव से निर्जरा और संवर होता है। समझ में

आया ? पूर्व में अनन्तकाल में जबतक संवर, निर्जरा आदि नहीं हुआ तो कहते हैं कि, पूर्व पुण्य-पाप के भाव से रजकण का बन्ध हुआ, वह पुद्गल की जड़ की अवस्था (है), कर्म की, मिट्टी की अवस्था है।

'**उनके उदय में...**' जो बन्ध पड़ा था, उसके पाक के काल में, उदय में पाक के काल में '**संयोग प्राप्त हों...**' उससे तो संयोग मिलता है। ठीक है ? उसमें आत्मा नहीं मिलता। पुण्य-पाप का भाव से बन्ध पड़ता है, वह जड़ की अवस्था (है) और जड़ के पाक से संयोग मिले। पुण्य का उदय हो तो ये पैसे-लक्ष्मी, कीर्ति का संयोग मिले। पाप का उदय हो तो निर्धनता, सरोगता-ऐसी प्रतिकूलता के संयोग मिले।

कहते हैं कि, '**उनके उदय में...**' पूर्व का कर्मबन्ध पड़ा है, उसके पाक काल में, उदय में '**संयोग प्राप्त हों, वे भी क्षमिक संयोगरूप से आते-जाते हैं,...**' बराबर है ? चलती-फिरती छाया। पूर्व का पुण्य-पाप का बन्ध से संयोग मिलो, संयोग वियोग हो जाओ - ऐसा अनन्तबार आते-जाते हैं। वह क्षणभंगुर वस्तु है। उसमें कोई आत्मा का लाभ है नहीं। ये तीसरी बात (हुई)।

पुण्य-पाप का बन्धन से संयोग प्राप्त हो, वह अपने आत्मा के वर्तमान पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं होता। क्या कहा ? पूर्व का पुण्य-पाप का बन्ध पड़ा है, उससे जो लक्ष्मी मिले, निर्धनता मिले, सघनता मिले, वह सब वर्तमान प्रयत्न से नहीं (मिलता)। पूर्व का पुण्य-पाप का बन्ध बड़ा है, उससे संयोग की प्राप्ति होती है। समझ में नहीं आया ? ये पैसा मिलता है, निर्धनता मिलती है, सघनता मिले, निरोग मिले, रोग होता है, वह वर्तमान प्रयत्न का फल नहीं (है), वैसे राग बराबर करे तो शरीर की अवस्था रख सके, निरोगता (रहे) और बराबर ध्यान न रखे तो सरोग हो जाये, ऐसी बात है नहीं। वह तो पूर्व के पुण्य-पाप के भाव से जैसा बन्ध पड़ा है, ऐसा उसके उदय से ऐसा संयोग हो जाता है। अपने प्रयत्न के बिना पूर्व के पुण्य के, पाप के कारण ऐसी संयोग अवस्था आ जाती है। आहा...! पैसा-बैसा चाँदी में कमाना, वह क्या वर्तमान पुरुषार्थ का फल है ? ऐसा कहते हैं। संयोग प्राप्त होता है, पूर्व का बन्ध पडा है उससे संयोग प्राप्त होता है। वर्तमान तेरा अशुभराग या शुभराग से वर्तमान सामग्री मिलती नहीं। क्या

करना ? पता नहीं, क्या चीज़ है, उसकी पता नहीं। तुझे सम्यग्ज्ञान का पता नहीं और हित करना (है), कहाँ से हित होगा ? समझ में आया ?

कहते हैं, पुद्गल बन्ध पड़ा है, उससे संयोग प्राप्त होता है, बस ! सघनता, निर्धनता, सरोगता, निरोगता, अनुकूलता, प्रतिकूलता वह सब पूर्व का पुण्य-पाप का बन्ध पड़ा है, उसके फल में आता है। बराबर है ? नौकरी व्यवस्था करते हैं तो पैसा मिलता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। दौसो का वेतन, तीन सो का वेतन मिलता है, वह वर्तमान नौकरी का भाव करते हैं तो भाव किया तो मिलता है, ऐसा नहीं। पूर्व के पुण्य के कारण से मिलता है। सरकार क्या दे ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ... घर में आते है...

उत्तर :- घर में आते है लेकिन वह तो विकल्प है और जाने की क्रिया जड़ की है। आत्मा कहाँ जड़ की क्रिया करता है। सूक्ष्म बात (है)। तत्त्व का पता नहीं। सात तत्त्व हैं... कहा न ? स्व-पर का भेद कोटि उपाय करके पहले करो। जब तक स्व-पर का भेद नहीं होगा, तब तक मेरी सम्यक् ज्ञान कला जागी नहीं और जगे बिना तुझे कभी धर्म होता नहीं। आहा..हा...! समझ में आया ?

कहते हैं, थोड़ी बात में तो बहुत समा दिया है न ! देखो ! पाठ में ऐसा है या नहीं ? '**पुण्य-पाप फल मांहि**' इतने शब्द हैं। उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, पूर्व का जो पुण्य-पाप बँधा है, उसका फल है। कौन ? ये संयोग और वियोग होता है वह। '**हरख बिलखौ मत भाई;**' अब कहते हैं कि, पूर्व के पुण्य के कारण ये चीज़ मिली, उसमें हर्ष नहीं करना। समझ में आया ? उस चीज़ से आत्मा को कोई लाभ होता है - ऐसा है नहीं। पुण्य के कारण चीज़ मिली - लक्ष्मी, कुटुम्ब, परिवार, हाथी, समाज बोल लिये हैं न ? उससे कोई आत्मा का काम नहीं होता, वह कोई आत्मा का लाभ नहीं है। डॉक्टर ! कुटुम्ब-कबीला बहुत मिले, पाँच-पचास लाख की पुंजी मिले तो उसमें आत्मा को क्या ? वह तो पहले कहा नहीं ? उसमें कहा था न ? '**धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै;**' तुझे थोड़ा भी काम नहीं आता। आहा..हा...! '**राज तो काज न आवै;**'

मुमुक्षु :- व्यवहार से आवे।

उत्तर :- धूल में भी आता नहीं है ? उसमें लिखा है ?

यह तो 'छहढाला' पढते हैं, 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै;

ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप मैं ध्रुव नित्यानन्द हूँ, ऐसा अंतर्मुख का आत्मा का ज्ञान हुआ वह ज्ञान अचल रहेगा क्योंकि वह चीज़ अपनी है। पूर्व के पुण्य-पाप से मिली चीज़ अपने को कुछ काम आती नहीं, कुछ काम आती नहीं। कुछ काम आती नहीं ? खाना-पीना, लड्डू मिलना। पैसे हो तो मिलता है या नहीं ? आत्मा को कुछ काम नहीं आती, ऐसा कहते हैं। वह देहादि की क्रिया में भले निमित्त हो। समझ में आया ? पूर्व का पुण्य का फल राज, बाज, काज, घोड़ा, हाथी, स्त्री, कुटुम्ब आत्मा को बिलकुल काम नहीं आते। आत्मा परपदार्थ है, वे उससे परपदार्थ हैं। परपदार्थ अपने को काम में आवे - ऐसी चीज़ है नहीं। भाई ! ये क्या होगा ? अरे... अरे... ! बडी भ्रमणा ! परचीज़ बिलकुल, किंचित् आत्मा के हित में काम आवे - (ऐसा) बिलकुल नहीं (है)। समझ में आया ?

कहते हैं कि, पूर्व का पुण्य का फल और पाप का फल संयोग मिला, वह संयोग आत्मा को कुछ काम का है नहीं। भाई !

मुमुक्षु :- ... सोच में पड़ जाते हैं...

उत्तर :- ऐसा सुभट है न। आज सुबह वे उलझन लेकर आये थे।

मुमुक्षु :- रात को नींद नहीं आये तो क्या करे ?

उत्तर :- नींद न आये (वह) जड़ की क्रिया है, उसमें क्या हुआ ? आत्मा को क्या दुःख हुआ ? आत्मा को क्या दुःख हुआ ? संयोग है, संयोग की चीज़ है। यहाँ तो ग्रन्थकार कहते हैं। आचार्यों का कथन जो परंपरा से आया है, वही 'दौलतरामजी' 'छहढाला' में कहते हैं।

तुझे पूर्व के पुण्य के कारण संयोग मिला, वह क्या तेरे काम का है ? वह तो क्षणभंगुर चीज़ है, परचीज़ है, तेरे आत्मा के लिए बिलकुल हित में काम की नहीं। आहा..हा... !

पाप का संयोग मिला, वह (भी पूर्व के उदय का फल है)। अब पाप का (लेते हैं)। भाई ! एक तंदुरस्ती चाहिए, पैसे नहीं चाहिए। तब (दूसरे मुमुक्षुने) कहा कि, तंदुरस्ती .. मिले या .. निले ? पूर्व में असाता बांधी है... ये क्या कहते हैं ? पूर्व में पापभाव से असाता का बन्ध पड़ा है तो असाता मिलेगी, शरीर में रोग आयेगा। क्या तंदुरस्ती आयेगी ? तंदुरस्ती का पुण्य किया नहीं और तंदुरस्ती की इच्छा करनो, मूढ है। अरे... ! पुण्य हो और तंदुरस्ती हो तो भी आत्मा को क्या लाभ है ? ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा... ! आत्मा को तंदुरस्ती का क्या लाभ है ? समझ में आया ? आहा..हा... !

सातवीं नरक में नारकी महापाप करके जाते हैं। (उसे) बहुत प्रतिकूलता हैं, तो भी उसमें कोई प्राणी आत्मज्ञान पा लेते हैं। अन्तर में (ऐसा हो जाता है कि), ओ..हो... ! ये क्या चीज़ है ? ये संयोग क्या ? प्रतिकूलता (क्या) ? मैं चीज़ क्या हूँ ? मुझे मुनियोंने, सन्तों ने, ज्ञानियों ने पूर्व में कहा था लेकिन मैंने मेरी सावधानी से मेरा काम नहीं किया, ऐसा विचार करके सातवीं नरक में सम्यग्दर्शन पा लेता है। कहाँ ? सातवीं नरक में। आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य हूँ, ये शुभ-अशुभभाव दु:खदायक हैं, संयोग पर हैं, दु:खदायक नहीं। पर संयोग मुझे दु:खदायक नहीं। सातवीं नरक में संयोग, हाँ ! सातवीं नरक का संयोग, समकिती ऐसा जानते हैं कि, ये संयोग मुझे दु:खदायक नहीं (हैं)। भाई ! आहा..हा... ! यहाँ तो तुम्हारा पैर नहीं चलता, दूसरा कुछ है नहीं, दिखने में कुछ है नहीं, लड्डू खा जाते हो। लड्डू छोड़ देता है ? मुझे शरीर में ठीक नहीं है तो मैं लड्डू नहीं खाऊँगा।

मुमुक्षु :- पराधीन है ना !

उत्तर :- मैं दूसरा कहता हूँ, मैंने ऐसा कब कहा ? ये शरीर बराबर चलता नहीं है, चूरमा बनाया हो तो चूरमा छोड देता है ? कि, नहीं, नहीं। मैं पराधीन हूँ मुझे चूरमा नहीं खाना है, ऐसे छोड़ देता है ? मैं तो पराधीन हूँ, भैया ! चूरमा कहते हैं न ? लड्डू बनाते हैं। घी लबालब डालकर (बनाया हो) और उडद की दाल, पतरवेलिया की पकोडी, अलवी (के पान की)

पकोडी होती है न ? मेरे शरीर में ठीक नहीं है तो मैं वह चीज़ छोड देता हूँ, मुझे खाना नहीं है। ऐसा करता है ?

यहाँ कहते हैं, वह संयोगी चीज़ है। पूर्व के पाप के कारण सरोगता, निर्धनता, दारिद्रता तो संयोग है, क्षणभंगुर है वह आत्मा में दु:खदायक है नहीं, दु:खदायक है नहीं। अज्ञानी मूढ ऐसी मान्यता करता है कि, प्रतिकूलता मुझे दु:खदायक है। क्या परद्रव्य दु:खदायक है ? समझ में आया ? क्या परवस्तु आत्मा को दु:ख देती है ? तीनकाल में नहीं। आत्मा अपने को भूलकर विकार करता है वह दु:ख का कारण होता है। परचीज़ दु:ख का कारण है नहीं। समझ में आया ? परचीज़ दु:ख का कारण है नहीं।

उसी प्रकार परचीज़ सुख का कारण, कल्पना का सुख का कारण भी नहीं। अज्ञानी कल्पना करता है कि, मुझे ये चीज़ अनुकूल है, कुटुम्ब अनुकूल है, पैसा अनुकूल है, ऐसा है। ऐसी मान्यता करके मूढ कल्पना उठाकर सुखी हूँ, ऐसा मानता है। परचीज़ सुख का कारण है नहीं। पुण्य का लाख, करोड़ संयोग मिले, वह सुख का कारण है नहीं। पाप से करोड़ प्रतिकूलता मिले, वह दु:ख का कारण है नहीं। ऐसा नहीं मानता है और अज्ञानी मूढ ऐसा मानता है कि, प्रतिकूलता मुझे दु:ख का कारण है, अनुकूलता सुख का कारण है। (वह) मिथ्यात्व का बड़ा पाप करता है। समझ में आया ? आहा..हा..! वह मिथ्यादृष्टि का बड़ा पाप है। श्रद्धा विपरीत है, श्रद्धा का भान है नहीं। जो पूर्व का पाप आया, उसमें उससे प्रतिकूलता हुई – ऐसा माननेवाला उससे अनंतगुना नया पाप बाँधता है। नकार किया, स्वयं ने नकार (किया कि), दु:ख मेरे कारण से नहीं, उसके कारण है। ऐसी मान्यता करके मिथ्यादृष्टि असत्यबुद्धि नया अनन्त पाप का बन्धन करता है। वर्तमान प्रतिकूलता है, उससे अनन्तगुनी प्रतिकूलता आयेगी, वहाँ उसका जन्म होगा। समझ में आया ? भान नहीं कि क्या (वस्तु स्वरूप है)।

यहाँ तो कहते हैं, '**उदय में जो संयोग प्राप्त हों...**' थोड़े में बहुत भर दिया है। यह 'छहढाला' तो सादी हिन्दी भाषा है। उसका भी अर्थ नहीं समझे और ऐसे ही बोले जाये। '**उदय में जो संयोग प्राप्त हों, वे भी क्षमिक संयोगरूप से आते-जाते हैं,...**' पूर्व के पुण्य के कारण ये चीज़ आते-जाते संयोगरूप हैं। अपने को कोई सुख-दु:ख का कारण ये चीज़ नहीं। बराबर

है ? '**जितने काल तक वे निकट रहें,...**' देखो ! आत्मा के समीप में पूर्व पुण्य-पाप का बन्ध पड़ा था, उसके समीप में अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री जितने काल रहे '**वे सुख-दुःख देने में समर्थ नहीं है।**' समझ में आया ? पूर्व के पुण्य-पाप के बन्ध की वर्तमान मिली सामग्री, वर्तमान क्षणिक कुछ काल रहे, वह सामग्री आत्मा को सुख-दुःख देने में तीनकाल में समर्थ नहीं। बराबर है ?

मुमुक्षु :- कर्म दुःख देते हैं।

उत्तर :- कोई दुःख देता नहीं। कर्म ने कहाँ दुःख दिया ? वह मूढ मानता है कि, मुझे दुःख हुआ। वह तो अज्ञान से मानता है। उसकी मान्यता का दुःख है। कर्म के कारण से नहीं, सामग्री के कारण नहीं। तत्त्व का पता नहीं और हमें धर्म करना है, कहाँ से होगा ? सात तत्त्व क्या है ? वह तो अजीवतत्त्व, संयोग में अजीव आया। अजीवतत्त्व दुःखदायक है ? पुण्य-पाप का बंध अन्दर में पड़ा, वह तो जड़ है। आत्मा का लाभ है ? और जो शुभाशुभभाव हुआ, वह आस्रव है। समझ में आया ? क्या वह आत्मा को लाभदायक है ? शुभाशुभ परिणाम से लाभ मानना, वह भी मिथ्यात्व, अज्ञान, स्व-पर का विवेक का अभाव (है)। पुण्य-पाप का बंध पड़ा, उसमें पुण्य ठीक (है), पाप अठीक है - ऐसी मान्यता भी अज्ञान और स्व-पर के विवेक बिना की चीज़ है और उससे बाह्य संयोग मिले, उसको सुख-दुःख का कारण मानना, वह भी मिथ्यादृष्टि भेदज्ञान के अभाव से मानता है।

भेदज्ञान हो कि, ये तो परचीज़ है, मैं उससे भिन्न चीज़ को भिन्न चीज़ सुख-दुःख उत्पन्न करा दे - (ऐसी) तीनकाल में ताकत नहीं। पता नहीं, पता नहीं। समझ में आया ? भाई ! अच्छे पुत्र हों, अच्छी लक्ष्मी मिले, शरीर अनुकूल मिले, वह तो सुख का कारण है या नहीं ? बिलकुल नहीं ?

यहाँ तो पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना, इतना शब्द लिया। '**पुण्य-पाप-फलमांहि, हरख बिलखौ मत भाई**' एक पद में तो बहुत भर दिया (है)। भाई ! भगवान ! तुम आत्मा हो न ! तो ज्ञानानंद स्वरूप तेरी चीज़ है न ! पूर्व का पुण्य-पाप का बन्धन से संयोग मिले, तुझे क्या हर्ष-शोक करना है ? वह चीज़ कोई हर्ष-शोक कराती है ? हर्ष-शोक करना

तेरा स्वभाव है ? समझ में आया ? हर्ष-शोक करना, वह मिथ्यात्वभाव है।

तब कोई कहे कि, ज्ञानी होता है तो उसी भी हर्ष-शोक थोड़ा होता है न ? होता है। लेकिन वह हर्ष-शोक परपदार्थ के कारण से होता है - ऐसा नहीं मानते, तो अनन्त हर्ष-शोक नहीं होता। आहा..! भाई ! धर्मी जीव को प्रतिकूलता-अनुकूलता बाहर में आती है परन्तु ज्ञानी उससे सुख-दुःख नहीं मानता, उससे हर्ष-शोक नहीं करते। अपनी पर्याय में कमजोरी से थोडा हर्ष-शोक हो जाये, वह चारित्र का अल्प दोष है और पर के कारण से मुझे सुख-दुःख हुआ वह मिथ्यात्व का अनन्त दोष है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा...! है ? वह चारित्रदोष है लेकिन अपनी अस्थिरता का दोष है।

(समकिती ज्ञानी को) सम्यक् भान है कि, मैं तो आत्मा हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ, पुण्य-पाप का भाव विकार है; संयोग पृथक् है। प्रतिकूल संयोग आया तो प्रतिकूलता के कारण समकिती को शोक नहीं होता। २५ साल का एक लड़का दो साल की शादी के बाद मर गया, उस समय में धर्मी जीव है उसे लड़का मर जाने का शोक नहीं होता; पर से शोक नहीं होता। आहा..हा...! थोड़ा शोक होता है, वह अपनी कमज़ोरी से होता है तो वह दोष अल्प है। आहा..हा...! बात में फर्क (है)। उस चीज़ से मुझे दुःख हुआ ऐसी मान्यता का पाप, मिथ्यात्व का अनन्तगुना पाप है। समझ में आया ? दोनों में फर्क है, पाप-पाप में फर्क है। पकड़-पकड़ में फर्क है। बिल्ली चूहे को पकडती है और बिल्ली अपने बच्चे को पकड़ती है। (लेकिन) पकड़-पकड़ में फर्क है।

धर्मी जीव अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा में आनन्द हूँ, पूर्व के किसी पाप के बन्धन से प्रतिकूलता आई, निर्धनता हो गई, पुत्र का मर जाना, शरीर में रोग होना, क्षय रोग आदि हो जाना, उससे वे दुःख नहीं मानते। सम्यग्दृष्टि-धर्मी उससे दुःख नहीं मानते लेकिन अपनी कमज़ोरी में सहनशीलता के अभाव में थोड़ा शोक, दुःख आ जाता है, वह अल्प दोष अवस्था है।

मिथ्यादृष्टि को प्रतिकूल संयोग मिला (तो मानता है कि) उसके कारण मैं दुःखी हूँ, वह अनन्तानुबंधी का महान पाप दोष है। आहा..हा...! पता नहीं, अभी दोष का माप क्या है ?

तत्त्व का पता नहीं कि, परतत्त्व मुझे दु:खदायक है, ऐसा माननेवाले को मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी का पाप होता है। समझ में आया ? अनन्त पाप होता है।

सम्यग्दृष्टि लड़ाई में हो, पुत्र मर जाये, लडाई में भी गये हो, सम्यग्दृष्टि हैं, पुत्र मर जाये तो उसका उन्हें शोक नहीं है। आ..हा.. ! परद्रव्य के कारण शोक नहीं है, होता नहीं है। अपना पर्याय में सहनशीलता की कमजोरी के कारण थोड़ा शोक आया, उसका अल्प बन्धन है। मिथ्यादृष्टि, मेरा बड़ा लड़का मर गया, इसलिए मैं दु:खी हुआ, ऐसी दु:ख की अवस्था का परिणाम अनन्त संसार की वृद्धि का कारण पाप है। आहा..हा... ! समझ में आया ? बात में ऐसा फर्क है। पकड़-पकड़ में फर्क है। अज्ञानी परचीज़ को दु:ख का कारण मानता है, वह बड़ा पाप है। ज्ञानी पर को दु:ख का कारण मानते नहीं। मेरी सहनशीलता में कमजोरी है, इसलिये मुझे थोड़ा दु:ख, शोक आ जाता है, शोक आ जाता है, पर के कारण से नहीं। इस शोक का आना अल्प पाप है और अज्ञानी को पर के कारण से मुझे थोड़ा दु:ख,शोक आ जाता है, शोक आ जाता है, पर के कारण से नहीं। इस शोक का आना अल्प पाप है और अज्ञानी को पर के कारण से मुझे दु:ख हुआ, वह मिथ्यात्व का -अनन्त संसार का पाप है। समझ में आया ?

वैसे सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को पूर्व के पुण्य के कारण चक्रवर्ती पद हो, छह खंड का पद हो। समझ में आया ? ९६ हजार स्त्री हो। समझते हैं (कि), ये परचीज़ हैं। मुझे सुख का कारण है नहीं। मेरा सुख का कारण तो मेरा आत्मा है। मेरे पास (है), मैं आनन्दमय हूँ. ऐसा सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में अविरती सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो तो भी ९६ हजार स्त्री चक्रवर्ती को है... समझ में आया ? (लेकिन) सुख कारण नहीं मानते। सुख का कारण मेरा आत्मा है। आनन्द तो मेरे पास है लेकिन जरा आसक्ति का थोडा राग हो जाता है, ये आसक्ति का दोष-चारित्रदोष अल्प बन्धन है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- इसलिये तो यहाँ कहने में आता है। ज्ञानी-अज्ञानी का प्रमाण अन्तर से है, बाहर से है नहीं। समझ में आया ?

'ऋषभदेव' भगवान जब कैलासपर्वत से मोक्ष पधारे तो 'भरतजी' अन्तिम दर्शन करने को गये और इन्द्र भी उपर से आये, 'शक्रेन्द्र' उपर से आये। उसका मित्र है न ? और दोनों भगवान के भगत हैं। भगवान को मोक्ष पधारते हुए देखा तो 'भरत' चक्रवर्ती की आँखमें से आँसू चले गये। आँसू की धारा बहती है। अ..हो.. ! भरतक्षेत्र का सूर्य आज अस्त हो गया, ऐसे रोते हैं। रोते हैं, कहते हैं न ?

इन्द्र कहते हैं, अरे.. !'भरत'! आपको तो मालूम है न कि, आप तो चरमशरीरी हैं। इन्द्र कहते हैंकि, आपको खबर है, आपको चरमशरीर, अन्तिम शरीर है। हम तो 'शक्रेन्द्र' हैं, हमें मनुष्य का एक अवतार लेना पड़ेगा। समकिती हैं, आत्मज्ञानी हैं, आत्मध्यानी (हैं), दोनों, हाँ !'भरत' चक्रवर्ती भी आत्मज्ञानी हैं और 'शक्रेन्द्र' भी आत्मज्ञानी समकिती हैं। भगवान को मोक्ष जाते हुए देखते हैं और जब रोते हैं, अरे.. ! प्रभु ! हमारा भरतक्षेत्र का सूर्य अस्त हो गया। आँसू की धारा (चली)। इन्द्र कहते हैं, 'भरत' तुम्हारा चरम शरीर है न ! तुम तो इसी भव में केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष जानेवाले हो। हमें तो अभी स्वर्ग से (जाकर) एक अवतार करना पड़ेगा।'भरत' कहते हैं, इन्द्र ! इन्द्र मुझे मालूम है। परचीज़ के कारण मुझे रोना नहीं आया। समझ में आया ? परचीज़ का विरह हुआ इसलिए रोना नहीं आया, मेरी कमजोरी में भगवान के प्रति थोड़ा प्रेम है, इतना कमजोरी का प्रेम का रोना आ गया है। समझ में आया ? फर्क है, रोने-रोने में र्क है। आहा..हा... ! (लोगों को) तत्त्व मालूम नहीं। जीव क्या है, पुण्य-पाप क्या है, बन्ध क्या है, फल क्या है, इस फल में सुख-दु:ख होता है या नहीं, मालूम नहीं ? तत्त्व की दृष्टि का पता नहीं और चलो हमें धर्म हो जायेगा। कहाँ से धर्म होगा ? संयोग के कारण रोना नहीं आया है। अपनी कमज़ोरी है न ! थोड़ा चारित्रदोष है। भगवान के प्रति इतना प्रेम है। अपने कारण थोड़ा रोना आया। उसका अल्प बन्धन है। समझ में आया ?

अज्ञानी (को ऐसा लगता है), भगवान चले गये, उनसे मुझे धर्म था, वे थे तो मुझे धर्म होता था, वे थे तो मुझे धर्म रहता था - ऐसी मान्यता थी तो उसे जो दु:ख होता है, वह अज्ञान का दु:ख होता है। ज्ञानी को तो मेरा आत्मा है तो धर्म मुझसे है। मेरे शुभभाव में, श्रवण में भगवान निमित्त थे, उसका अभाव हो गया है। तो ज्ञानी को थोड़ा शोक होता है, वह अल्प चारित्रदोष का शोक है। अज्ञानी को शोक होता है, (वह) प्रतिकूल चीज़ देखकर शोक करता

है तो अनन्त प्रतिकूल चीज़ का उसे द्वेष आया। ऐसे द्वेष में अनन्त पाप का बन्धन होता है। आहा..हा... ! समझ में आया ? आहा.. ! तत्त्व की चीज़ ऐसी है।

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्ह के घट,

सीतल चित्त भयौ जिम चंदन।

राग और पुण्य-पाप के विकल्प से मेरी चीज़ ही भिन्न है। ऐसा सम्यग्दर्शन गृहस्थाश्रम में पहले हुआ तो अनादि की पर से सुख-दु:ख की मान्यता थी वह टल गई, नाश हो गई। समझ में आया ? अपने आत्मा से आनन्द है और अपनी कमज़ोरी में जितना राग-द्वेष आता है, उतना दु:ख है। वह राग-द्वेष तो अनन्तवै भाग में बहुत थोड़ा आता है। अज्ञानी को इसका पता नहीं। अज्ञानी तो पर की प्रतिकूलता (देखता है तो माने कि), अरे.. ! मैं दु:खी। ये अनुकूलता है तो सुखी (हूँ)। भाई ! शरीर में निरोगता हो। आप सबका शरीर निरोग है, मेरा शरीर सरोग शरीर है; इसलिए हम दु:खी है। आप निरोग हैं तो सुखी हैं। मूढ है। महा मथ्यित्व का नया पाप बाँधता है। बराबर है ? न्याय में बराबर है या नहीं ? समझ में आता है या नहीं ?

अपने अलावा कोई भी परपदार्थ हो, उससे सुख-दु:ख की मान्यता, पर से करना, उसका नाम मिथ्यात्वभाव है। बराबर है ? और अपने आत्मा में आनन्द है - ऐसा न मानकर परचीज़ से मुझे आनन्द मिलेगा, परचीज़ से मुझे दु:ख होगा, उसका नाम मिथ्यादृष्टि का अनन्त संसार का महान पाप है। आहा..हा... !

(यहाँ) कहते हैं कि, '**उदय में जो संयोग प्राप्त हों, वे भी क्षणिक संयोगरूप से आते-जाते हैं,...**' आते-जाते हैं, उसमें तेरे (में) क्या आया ? कहो, बराबर है ? भाई ! किसी के पास करोड़ रूपये हों और किसी के पास दस लाभ हो तो करोड़वाला सुखी है या नहीं ? पर में किसी के पास पाँच हजार और किसी के पास पाँच करोड़ (है)। तो संख्या पर से सुख कल्पना है ? मूढ है। कौन कहता है, संख्या पर से सुख है ?

मुमुक्षु :- लोग कहते हैं।

उत्तर :- लोग तो मूढ हैं। पागल की होस्पिटल में सब पागल हैं। पागल की होस्पिटल है न तो सब पागल हैं।

मुमुक्षु :- पागल को तो बंद करके रखते हैं।

उत्तर :- अज्ञान से बंध होता है, यहाँ यह कहते हैं। देखो न ! एक शब्द में कितना लिया है ! भगवान ! तुझे मालूम नहीं। पुण्य-पाप का फल तो संयोग की प्राप्ति है, क्षणिक चीज़ है। क्षणिक चीज़ है। क्षणिक चीज़ तुझे सुख-दुःख का कारण नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... !

'जितने काल तक वे निकट रहें...' क्या ? पूर्व का पुण्य-पाप का फल अनुकूल-प्रतिकूल जितने काल निकट रहें। आत्मा में कहाँ चीज़ घुस जाती है ? वह तो दूर है। **'उतने काल भी वे सुख-दुःख देने में समर्थ नहीं है।'** समझ में आया ? जितने काल पूर्व के पुण्य-पाप के संयोग से अनुकूल-प्रताकूिल सामग्री रही (उतने काल भी) वह चीज़ आत्मा को सुख-दुःख का कारण है नहीं। समझ समझ में फर्क है। 'समज पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्केल।' सच्चा ज्ञान हुए बिना अनन्तकाल परिभ्रमण करके मुनिपना ले लिया। आया न ? 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।' उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, अनन्तबार में जितनी बार नौंवीं ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत पाले, अठ्ठाईस मूलगुण पाले वह क्या है ? सुख नहीं दुःख था - ऐसा कहते हैं। उसके अर्थ में आया या नहीं ?

'मुनिव्रत धार अनंतबार' तो मुनिव्रत धारे तो व्रत धारण किया था या नहीं ? व्रत धारे थे न ? पंचमहाव्रत लिये थे न ? अट्ठाईस मूलगुण पाले थे न ? 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।' सुख न पाया उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, दुःख पाया। क्या आया उसमें ? हिसाब करना है या नहीं ? दुकान पर चांदी का हिसाब करता है या नहीं ? डॉक्टरजी ! उसमें क्या आया ? 'लेश सुख न पाया' 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो' - उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, महाव्रत के परिणाम शुभराग हैं और दुःखरूप हैं। डॉक्टर ! देखो ! उसमें क्या लिखा है ? लिखा है या नहीं ? कौन-सी गाथा है ? पाँचवी, पाँचवी गाथा है। चौथी ढाल की पाँचवीं (गाथा है)। उन्होंने बहुत भर दिया है, गागर में सागर भर दिया है। देखो !

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;
ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्त तैं सहज टरैं ते।

सहज... सहज... ज्ञान के भान में कर्म सहज ही टल जाते हैं। ज्ञानानन्द मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, रागादि मेरी चीज़ नहीं – ऐसे भान में कर्म सहज टल जाते हैं। '**मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो**' मुनिव्रत न ? व्रत या अव्रत ? व्रत। व्रत यानी ? अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच व्रत अनन्तबार धारे। लेकिन '**निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।**' आत्मा का सुख अंश भी नहीं पाया। उसका अर्थ क्या हुआ ?

मुमुक्षु :- संसार का सुख प्राप्त किया।

उत्तर :- संसार का सुख अर्थात् दु:ख। बराबर आया है या नहीं ? आहा..हा...! 'छहढाला' में तो थोड़े में ऐसी चीज़ भर दी है। सादी हिन्दी भाषा में है। समझ में आया या नहीं ?

आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है, ऐसा अनुभव दृष्टि किये बिना तेरा पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण भी दु:ख का कारण है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का लेश सुख न पाया तो दु:ख पाया। शुभाशुभभाव दोनों दु:खरूप हैं, सुखरूप है नहीं। दूसरी बात। देखोयहाँ आया न ?'**सुख-दु:ख देने में संयोग समर्थ नहीं है।**' परन्तु सुख-दु:ख का कारण तेरा विकारीभाव (है)। समझ में आया ? वह चीज़ नहीं। बहुत लक्ष्मी मिली, बादशाही है, हमको सुख हुआ। मूढ है। पर से सुख है तो तूने कल्पना की। प्रतिकूलता है तो हम दु:खी हैं, भैया ! निर्धन हो गये। कुछ नहीं (है) शरीर ठीक रहता नहीं, स्त्री मर गई, लड़के को क्षय हो गया, लक्ष्मीचली गई, दुकान जल गई, वीमावाला डूब गया, उधारी चली गई। जहाँ पैसे लेने थे वहाँ सूखा पड़ा। इस साल तो हम बहुत दु:खी हैं। मूढ है। वह तो पूर्व के पाप का फल प्रतिकूलता है। वह दु:ख का कारण है ? किसने तुझे कहा ? देखो !

'**वे निकट रहें उतने काल भी वे सुख-दु:ख देने में समर्थ नहीं हैं।**' उसमें कितना भरा है ! लेकिन समझे, विचार कहाँ करना है ? अब कहते हैं, अन्तिम (बात करते हैं)। '**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।**' उसकी बात करते हैं। जैनधर्म में वीतराग सर्वज्ञ

परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, उनके धर्म में '**समस्त उपदेश का सार यही है कि- शुभाशुभभाव, वह संसार है;...**' शुभभाव हो या अशुभभाव हो। वे स्वयं कहते हैं।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;

तोरि सकल जग द्वंद-फंद नित आतम ध्याओ।

शुभाशुभभाव भी द्वंद-फंद हैं। है ? 'छहढाला' तो आपके यहाँ पहले से चलती है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- तुम स्वीकार तो करते नहीं।

मुमुक्षु :- तोते की भाँति।

उत्तर :- तोते की भाँति। बात सच है।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;

तोरि सकल जग द्वंद-फंद नित आतम ध्याओ।

शुभाशुभभाव हैं वे फंद हैं, द्वंद हैं, विकार है, दुःख है। उनको छोड़कर '**नित आतम ध्याओ।**' देखो ! है ? भगवान आत्मा, शुभअशुभभाव हो और अशुभ से बचने को शुभभाव भी आता तो है, लेकिन है वह बन्ध का कारण। जगफंद का कारण है। उसमें जगत-संसार मिलेगा, आत्मा नहीं मिलेगा। आहा..हा.. !

मुमुक्षु :- अर्थ निकालने की आपकी विधि कोई अलग है।

उत्तर :- अर्थ निकालने की विधि, आप सब नहीं बैठे हैं ? ये युवा हैं, वकील हैं या नहीं ? यहाँ के कहाँ है ? वे तो 'कुचामण' के हैं, वकील हैं। युवा है, उसे यह बात जचती है या नहीं ? कहो, समझ में आया ? आपको अर्थ करना नहीं आये तो क्या करना ? ये 'छहढाला' तो बहुत कंठस्थ (की) है। अर्थ करने आये नहीं तो क्या करना ? आहा..हा... ! और ऐसा अर्थ करते हैं तो (दूसरे लोग) भडकते हैं, अरे... ! ऐसा हो गया। लेकिन सुन तो सही, अन्दर में वही कहते हैं।

'**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;**' का क्या अर्थ हुआ ? कि, शुभ-अशुभ परिणाम ये सब व्यवहार है। भाई ! अन्दर शब्द में ऐसा कहते हैं, हाँ ! तुझे बीच में दया, दान का शुभभाव आता है लेकिन है व्यवहार। वह बन्ध का कारण है। आता है भले, शुभभाव होता है, भक्ति, दया, दान, पूजा (का भाव आता है) परन्तु ये शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया ?'**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;**' शुभ-अशुभभाव पूर्व में था उसका बन्ध पड़ा, उसका फल संयोग (मिला), वर्तमान शुभाशुभभाव बन्ध का कारण है। उसकी दृष्टि छोड़कर भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप की रुचि लगाओ, उसकी दृष्टि करो, उसका ध्यान करो। वही आत्मा का संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है दूसरा कोई (कारण) है नहीं। उसमें है या नहीं ? अर्थ भरे हैं या नहीं ? या, 'सोनगढ'वाले (अपना घर का) निकालते हैं ? समझ में आया ? आहा..!

शुभाशुभभाव संसार (है)। उसका अर्थ निश्चय नहीं। '**इसलिए उसकी रुचि छोड़कर...**' समझ में आया ? शुभाशुभभाव की रुचि छोड़कर। तो क्या करना ? शुभाशुभभाव तो होते हैं। भगवान ! तेरा हित करना हो तो '**स्वोन्मुख होकर...**' स्वसन्मुख। शुभाशुभभाव हो, उसके सन्मुख में रुचि रखना, वह मिथ्यात्वभाव है। वह शुभाशुभभाव और देह की, जड़ की क्रिया का लक्ष्य करके उन्हें अपना मानना मिथ्यात्व है। तो क्या करना ? भगवान ! देहादि की क्रिया जड़ है, उसकी तो श्रद्धा छोड़ दे कि, मेरी क्रिया है, ऐसा छोड़ दे। परन्तु शुभ-अशुभभाव हैं वे मुझे हितकर हैं ऐसी श्रद्धा छोड दे। आहा..ह...! भाई ! पोपाबाई का राज नहीं है कि जल्दी से मिल जाये। पोपाबाई कहते हैं न ? कहो समझ में आया ?

क्या करना ?'**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;**' इन शब्दों की यह व्याख्या है '**लाख बात की यही, निश्चय उर लाओ;**' उसकी व्याख्या (चलती है)। लाख क्या, करोड़ और अनन्त बार - चाल अनुयोग, भगवान ने कहे चार अनुयोग - द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग, करणानुयोग। समझे ? सब का सार भगवान की वाणी में ऐसा आया कि, भगवान ! तुम तो पूर्णानन्द प्रभु हो न ! पुण्य-पाप विकार की रुचि छोड़, देह की क्रिया मेरी है - ऐसी श्रद्धा छोड़, चैतन्य सन्मुख हो और अपने सन्मुख में अपनी प्रतीति करना, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। आहा..हा...! समझ में आया ? परवाह ही नहीं की, भाई ! ऐसे ही कल

सुधरे (लोगों में) चले गये। काम कर दे, किसी का कर दे, किसी का सुधार कर दे, बड़े-बड़े भाषण करने। धूल में कुछ नहीं है। सही है या नहीं ?

मुमुक्षु :- आप कहो तो हाँ ही कहनी पड़े।

उत्तर :- ना कहो तो उसका उत्तर मिलेगा। ना कहो ना कि, हमें ऐसा नहीं बैठता तो उसका उत्तर मिले, उसमें क्या है ? देखो न, उसमें लिखा है क्या ? अपने तो शब्दार्थ में से निकलता हैं।

पुण्य-पाप-फलमाहि, हरख बिलखौ मत भाई;

यह पुद्गल परजाय, उपजि बिनसै फिर थाई।

उपजे-विनसे, जाये, उपजे-विनसे, जाये, उसमें तुझे क्या है ?

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;

तोरि सकल जग दंद-फंद नित आतम ध्याओ।

'दौलतरामजी' पंडित ने गृहस्थाश्रम में रहकर 'छहढाला' बनाई। वे कहते हैं, भगवान ! हों, भाव भले हों, उस भाव की रुचि छोड़कर तेरा आत्मा आनन्द की खान पड़ी है; शुद्ध चिदानन्द प्रभु है। उसमें अंतर्मुख होकर रुचि करो, सावधानी से स्वभाव में लग जाओ। वह तेरा मोक्षमार्ग का धंधा है और धर्म है। आहा..हा... ! कठिन बात है, भाई !

हमारे डॉक्टर ने यहाँ से प्रश्न किया था। 'राजकोट'। 'अन्जनचोर' ! 'अन्जनचोर'ने शंका नहीं की उसमें मोक्ष हो गया। देखो ! ए..ई... ! डोक्टर पलट गये। भाई ! वस्तुस्थिति है, उसे यथार्थ समझनी चाहिए। यथार्थ दृष्टि और यथार्थ ज्ञान बिना चारित्र सच्चा होता नहीं। आ गया न ? पहले आया था न ? भाई ! 'सम्यग्ज्ञान पवित्रता...' क्या आया था ? तीसरी ढाल की अन्तिम गाथा है। ८३ पन्ना है। '**सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र का मिथ्यापना।**' १७वीं गाथाहै, तीसरी ढाल। '**मोढमहल की प्रथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;**' 'या बिन ज्ञान चरित्रा' '**सम्यक्ता न लहैं,...**' सच्चापना, सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और चारित्रपना सच्चा होता नहीं। तीसरी ढाल की १७ वीं गाथा है, ८३ पन्ना है। ८० और ३ (है)। समझ में आया ?

'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै;
यह नरभव फिर मिलन कठनि है, जो सम्यक् नहिं हौवे।

समझ में आया ? यह नरभव फिर नहीं मिलेगा, भगवान ! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर लो, उसका प्रयत्न करो। शुभाशुभभाव का प्रेम-रुचि छोड़ो। हो, लेकिन स्वभाव की रुचि करो तो सम्यग्दर्शन होगा, नहीं तो फिर से ऐसा अवतार मिलेगा नहीं। (विशेष कहेंगे...)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

अपनी अपेक्षासे अन्य द्रव्य असत् हैं, स्वयं ही सत् है । स्वयं ही स्वयंका ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञानरूप सत् है । अतः स्वयंके सत्का ज्ञान करना । स्वयंके सत्का ज्ञान करने पर अतीन्द्रिय आनन्दकी झलक आए बिना रहती ही नहीं, और जो आनन्द न आए तो उसने निज सत् का यथार्थ ज्ञान किया ही नहीं । मूल बात तो अन्तरमें ढ़लना है - यही सम्पूर्ण सिद्धांतका सार है।

(परमागमसार-३८४)

❋

भले ही जीव तथा राग भिन्न रहकर एक क्षेत्रमें रहें तो भी दोनों कभी भी न तो एक रूप हुए और न ही हो सकते हैं । अतः तूँ सर्व प्रकारसे प्रसन्न हो । प्रभु ! तेरी चीज ! कभी राग रुप हुई नहीं, इसीलिए तूँ तेरा चित उज्जवल कर, सावधान होकर रागसे भिन्नरूप आनंदस्वरूपका अनुभव कर । प्रसन्न होकर भेद-ज्ञान पूर्वक ऐसा अनुभव कर कि यह 'स्वद्रव्य ही मैं हूँ ' ।

(परमागमसार-३८५)